रेवती रमण होने का अर्थ

सम्पादन

सतीश कुमार राय
अशोक गुप्त

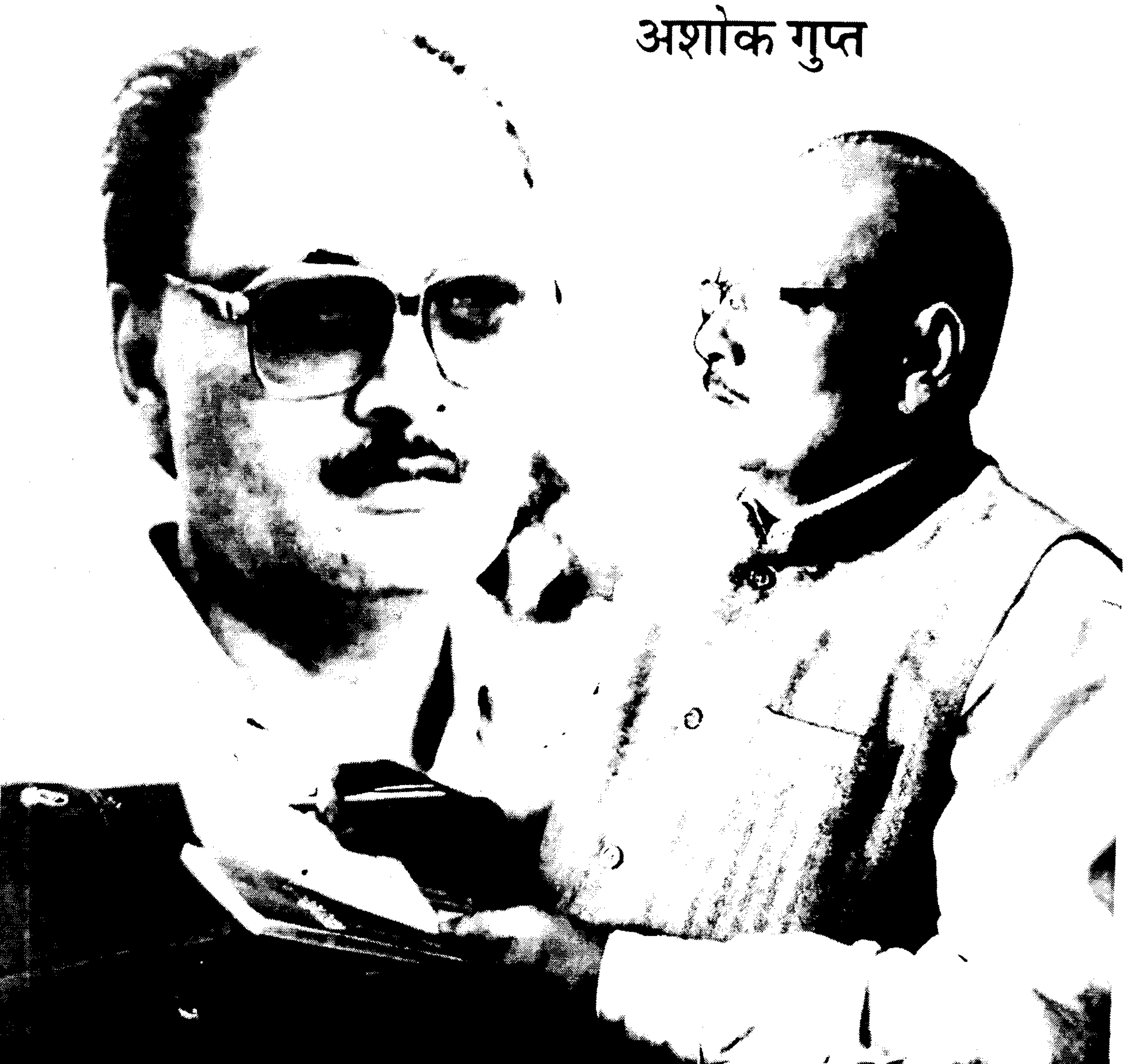

रेवती रमण होने का अर्थ

सम्पादक

सतीश कुमार राय
अशोक गुप्त

अभिधा प्रकाशन

प्रथम संस्करण
2020
सर्वाधिकार
सम्पादक

प्रकाशक
अभिधा प्रकाशन
रामदयालु नगर, मुजफ्फरपुर-842002

अक्षर-संयोजन
एस. कुमार

मुद्रक
बी० के० ऑफसेट, दिल्ली - 32

मूल्य
225/- (दो सौ पच्चीस रुपये)

Rewati Raman Honey Ka Arth
***Edited By* Dr. S.K. Rai & A. Gupta** **Rs. 225.00**

अनुक्रम

सम्पादकीय		: सतीश कुमार राय	7
प्रस्तुति		: अशोक गुप्त	21
1.	साथ चलते हुए	: विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	23
2.	हिन्दी साहित्य के चर्चित आलोचक...	: रिपुसूदन श्रीवास्तव	26
3.	आलोचना का कालयात्री	: मदन कश्यप	32
4.	रेवती रमण की आलोचकीय सक्रियता	: रामप्रवेश सिंह	36
5.	डॉ. रेवती रमण की आलोचना-दृष्टि	: विजयशंकर मिश्र	42
6.	साक्षात्कार	: राकेश रंजन	46
7.	साक्षात्कार	: कल्याण कुमार झा	57
8.	समय की रंगत	: अंजना वर्मा	66
9.	एक आलोचक का कवि	: पूनम सिंह	71
10.	अजनबियों के संग चल रहा थका अकेला	: राकेश रंजन	77
11.	कविता और मानवीय संवेदना	: जगदीश विकल	84
12.	युवा समीक्षक का प्रबुद्ध समीक्षात्मक विवेक?	: वेदप्रकाश अमिताभ	90
13.	समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य	: कृष्णचन्द्र लाल	94
14.	समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य...	: रवीन्द्र उपाध्याय	99
15.	रचना की तरह आलोचना	: रमेश ऋतंभर	103
16.	रेवतीरमण का 'समकाल'	: प्रेमशंकर रघुवंशी	105
17.	'कविता में समकाल' एक समीक्षा कृति	: श्रीराम परिहार	108
18.	संघर्ष तपी काव्य-साधना का संधान	: शेखर शंकर मिश्र	115
19.	जातीय संवेदना के सजग साहित्य चिन्तक	: संध्या पाण्डेय	121
20.	जातीय मनोभूमि की तलाश	: अनन्तकीर्ति तिवारी	125
21.	सहज-सरल, स्वाभिमान की आवाज	: सुशांत कुमार	130
22.	'आवाज के परिन्दे' और उनके सलीम अली	: अनामिका	134
23.	समकालीन कविता की पुख्ता पहचान	: रामेश्वर द्विवेदी	141
24.	कवियों की गली से गुजरता कवि आलोचक	: उज्ज्वल आलोक	147
25.	पुस्तकों के फ्लैप से		153
चिट्ठी-पत्री			155
चित्रावली			191

अजनबियों के संग चल रहा थका अकेला

–राकेश रंजन

हिंदी में ऐसे आलोचकों की समर्थ परंपरा है, जिन्होंने अपने लेखन में आलोचना-विधा को समृद्ध करने के साथ ही सुंदर कविताएँ भी लिखी हैं। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामविलास शर्मा, आचार्य नलिनविलोचन शर्मा, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. नंदकिशोर नवल, डॉ. खगेंद्र ठाकुर सहित अनेक साहित्यकार इस परंपरा की महत्त्वपूर्ण कड़ियाँ हैं, जिनमें बेशक आज एक नई कड़ी के रूप में डॉ. रेवती रमण का नाम जोड़ा जाना चाहिए। जाग्रत् चेतना का कोई भी साहित्यकार, जो अपने समय के अनिवार्य प्रश्नों और साहित्य की रचनात्मक समस्याओं से टकराता हो, जिसकी संवेदना जीवन की विविध और जटिल अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए विकल रहती हो, उसका किसी एक ही विधा में बँधकर रहना असंभव है।

हालाँकि अक्सर देखा गया है कि आलोचना में सक्रिय हो जाने के बाद आलोचक अपने कवि-रूप को महत्त्व नहीं देते और इस बारे में पूछने पर यह कहकर टाल देते हैं कि वे कविताएँ कहाँ लिखते हैं, वे तो यों ही कभी कुछ कविता-नुमा जोड़-गूँथ लेते हैं, वह भी सिर्फ आत्मरंजन के लिए–कभी समस्या-पूर्ति के लिए तो कभी तुक-क्रीड़ा के लिए, कभी समय बिताने के लिए तो कभी नींद बुलाने के लिए, कभी किसी बात की तात्कालिक प्रतिक्रिया में तो कभी किसी के आग्रह या दबाव पर। इस प्रसंग में, जहाँ तक रेवतीजी का सवाल है, मुझे यह बात खास लगती है कि वे अपने कवि-रूप को स्वीकार भी करते हैं और अपने आलोचक-रूप के समानांतर उसे महत्त्व भी देते हैं। यदि कोई यह कहता है कि वे मुख्यतः आलोचक हैं, तो वह उनके सर्जक-व्यक्तित्व के एक प्रमुख आयाम की अनदेखी करता है; और यदि एक पल के लिए हम उसकी बात को मान भी लें, तो भी इसमें कोई दो राय नहीं कि उनकी कविताएँ उनके आलोचनात्मक लेखन की सर्जनात्मकता के एक स्रोत का पता तो देती ही हैं,

कवि-संवेदना के भी कुछ नए रंगों से हमारा परिचय कराती हैं।

'समय की रंगत' में रेवतीजी की सैंतालीस कविताएँ संगृहीत हैं। उनमें गुजरते हुए जो बात हम मुख्य रूप से महसूस करते हैं, वह यह कि वे हवा-हवाई नहीं हैं। आसमानी सैर करने और चाँद-तारों तक पहुँचने की रूमानी कोशिश उनमें नहीं है। उनकी विशेषता है कि वे हमारे युगीन यथार्थ और जीवन-संदर्भों से जुड़ी हैं। जीवन के राग-विराग को, हर्ष-विषाद को, विवशताओं और विडंबनाओं को वे प्रमुखता से व्यक्त करती हैं। देश-दुनिया में सांप्रदायिकता का उभार हो या पूँजीवादी सत्ता के वर्चस्व की स्थापना—वे संवेदनशीलता के साथ उनसे उत्पन्न विडंबनापूर्ण स्थितियों को दर्ज करती हैं और हमारे सामने रखती हैं। वे सहज और मार्मिक हैं। उनमें त्वरा नहीं है, पर वे तीक्ष्णता से मन में चुभती हैं। वे कम बोलती हैं, पर उनके अंदर गहरी अभिव्यंजनाएँ होती हैं। वे अभिव्यंजनाएँ कभी व्यथा या विषाद से युक्त होती हैं, तो कभी व्यंग्य या विक्षोभ से। यद्यपि वे किसी भाव से युक्त हों, यह निश्चित है कि सबके मूल में कवि-मन की वह ममता है, जिसका आलंबन है जनता और दुनिया की वे सभी सुंदर-सार्थक चीजें, जो हमारे जीवन को बेहतर बनाती हैं।

देश-दुनिया को लेकर कवि-मन की ममता ही है, जिस कारण से वह एक पल में किसी सुंदर दृश्य को देखकर आशा से भर उठता है, तो अगले ही पल किसी असुंदर स्थिति को देखकर निराशा से। आशा-निराशा के दो पाटों के बीच स्थित उसकी संवेदना सदैव विकल नजर आती है। उसकी उम्मीद में भी एक तकलीफ है और तकलीफ में भी एक उम्मीद! इस संदर्भ में 'समय की रंगत' की पहली कविता 'अभी तो' की चर्चा अवश्य की जानी चाहिए, क्योंकि इसमें प्रासंगिक कथ्य और प्रभावी शिल्प के संघटन में कवि-मन की तकलीफ और उम्मीद दोनों की अभिव्यक्ति हुई है। पूँजीवाद, बाजारवाद, वर्चस्ववाद, तानाशाही, संप्रदायवाद, आतंकवाद और इस प्रकार के अनेक स्वार्थी, तिकड़मी और हिंसक वादों के चक्रव्यूह में फँसे आज के समय में, जिसमें सारे मानवीय मूल्य और सुंदर विचार लगातार नष्ट होते जा रहे हैं, कवि की यह उम्मीद, आलोकधन्वा के शब्द लेकर कहें, तो 'तकलीफ जैसी है' : "अभी तो सुनी जा सकती है/ समय संध्या की कातर काँपती धड़कनें/ धीमी गति के समाचार की तरह/ जीवित हैं कुछ पुरानी मूल्यवान प्रतिध्वनियाँ/ उदास आत्मा की सलवटों में/ अमरता के कई-कई अवशेष"। कवि आशंकित है कि "अभी तो आने हैं भूकंप के कई बड़े झटके/ गिरेंगी गगनचुंबी इमारतें/ तो दब जाएँगी दुर्लभ दंतकथाएँ/ दुरभिसंधियों के मलबे के नीचे"। वह भविष्य के भयानक रूप की

कल्पना कर सिहर उठता है :

रौंदेंगे अश्वमेध के घोड़े
आस्था की दिगंतजयिनी पताकाएँ
कूटनीति के जमूरे
कवियों के महान सुंदर सपने
कंदुक समान नरमुंड
उछालेंगे पिशाच
पियानो बजाएँगे विश्व मंच पर
खोपड़ियों में भरकर उष्ण रक्त
पीयेंगे तानाशाहों के प्रेत
यशस्विनी डाकिनियों के नाम

कविता का अंत इस भयावह संकेत के साथ होता है : "संकेत है नटी की चीख/ कि यातना चलेगी अंतहीन।" कहना न होगा कि संग्रह की पहली ही कविता को पढ़कर हम इस कवि के मनोलोक तथा कथ्य, शिल्प और भाषा से संबंधित उसकी अपनी विशेषताओं को काफी हद तक समझ सकते हैं।

'इक्कीसवीं शताब्दी' कविता में कवि विकास की बेतरतीब और अंधी रफ्तार को लेकर चिंतित दिखाई देता है, साथ ही महाशक्तियों के बीच मचनेवाले घमासान और अंतरिक्ष-युद्ध को लेकर आशंकित भी। वह अपने युग के आत्मघाती चरित्र को देखकर हताश है, क्योंकि इसने पूरी पृथ्वी के समक्ष सर्वनाश का संकट पैदा कर दिया है। उसकी "जागती हुई आँखों में/ ताबड़तोड़ कब्रिस्तान के सपने" आने लगे हैं। उसका मन जगत् के नैसर्गिक वैविध्य और सौंदर्य को बचाने के लिए विकल है। यह आज की सबसे दुःखद सच्चाई है कि आदमी—जीवों की सभी प्रजातियों में सिर्फ एक यह आदमी—अपने अंधेपन में सभी प्रजातियों को, सब कुछ को और खुद को भी नष्ट करने में लगा है! नोम चॉम्स्की ने सन् 2006 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'फेल्ड स्टेट्स : द एब्यूज ऑफ पावर एंड द एसॉल्ट ऑन डेमोक्रेसी' में सही सवाल उठाया है कि "साढ़े चार अरब साल पुरानी इस पृथ्वी का अंत क्या हमारी ही अभागी आँखों के आगे होगा?" फिर लिखा है कि "परिस्थितियाँ तो यही बयान करती हैं।" इसके बाद उन्होंने पर्यावरण-विनाश से संबंधित जो आँकड़े दिए हैं, वे दिमाग घुमानेवाले हैं। 'कागज' इस संग्रह की एक सुंदर कविता है, जिसमें कागज सृजन-प्रयासों के प्रतीक के रूप में आया है—प्रत्यक्षतः साहित्यिक प्रयासों के और अप्रत्यक्षतः

सभी प्रकार के कला-प्रयासों के। कवि के शब्दों में, "शब्दों की सत्ता/ अनश्वर बनाती है कागज को"। उसका विश्वास है कि "मौसम बदल जाता है कागज की करवट से/ कैसा तो पिद्दी नजर आता है तानाशाह"। कहने की जरूरत नहीं कि ये पंक्तियाँ वर्तमान राष्ट्रीय संदर्भों में अत्यंत प्रासंगिक हैं, साथ ही सृजन के जन-सरोकार को व्यक्त करनेवाली भी। यह सृजन कभी कोमल सपनों का संपोषक बन जाता है : "कागज की नाव बने तैर रहे हैं शिशु-सपने", तो कभी 'प्रेम की पीर' का गवाह : "प्रेम की पाती प्रसन्नता है कागज की/ जो अक्सर धुल जाती है आँसुओं से"। जरा इस सृजन के सौंदर्य और वैराट्य को देखिए :

कागज धरती को धारण करते हैं
उजली हँसी में छिपाए
ब्रह्मांड की वेदना
खुला आकाश निश्छल निराकार
कोरे कागज दुग्ध धवल पंख हैं हंसों के
बड़ा से बड़ा दंभ
कंदुक-सा लुढकता नजर आता है
भीम की गदा से भी भारी
सव्यसाची के बाण से भी अचूक
कागज की आँच में झुलसकर
राख बन जाता है
आततायी का आतंक

'कागज' के साथ 'कलम' को भी देखना चाहिए। यह भी सृजन-कर्म को प्रतीकित करनेवाली एक सुंदर कविता है, जिसमें आज के हिंसक और विध्वंसकारी दौर में भी सृजनशीलता के प्रति कवि की गहरी आस्था झलकती है : "समय के शून्य से सितारे तक/ फैला हुआ नरपशुओं का महाअरण्य—/ इसमें सबसे कमाल की चीज/ यह कलम है/ असंख्य मासूमों को मायूस होने से बचाती/ प्यार और सब्जा उगाती"। यह 'कमाल की चीज' संघर्ष और जीवनी-शक्ति का दूसरा नाम है :

स्याह रात के समंदर से
जूझती रही स्याही की हर बूँद
देखते-देखते बुढ़ा गई आततायी की तलवार
संग्रहालयों में पड़ी धूल से अटी

समय के बाहर

दिलचस्प है कि संग्रह में 'कागज' और 'कलम' के बाद जो कविता है, उसका शीर्षक है 'किताब'। ये तीनों कविताएँ एक ओर कवि की सृजनास्था पर मुहर लगाती हैं, तो दूसरी ओर उसकी कल्पनाशक्ति और अभिव्यक्ति-कौशल को भी प्रमाणित करती हैं। कवि 'किताब' के समर्थन में है। जाहिर है कि वह तर्क, विज्ञान और विवेक पर आधारित बोध का हिमायती है, जो जड़ताओं से मुक्त करता है : "दीवारें भीतर की हों/ या बाहर की/ दिमागों को बंद होने से/ बचा लेती है किताब"। किताब के पन्नों में सपने जागते हैं और क्रूरता बेदम हाँफती है। "किताबें हँसती हैं/ आत्मा की उदास उजली हँसी/ आततायियों के आतंक और दहशत को मुँह चिढ़ाती"। आज, जबकि देश में मूर्खता के मंदिर उठाने और ज्ञान के मंदिर गिराने की सत्ता-प्रायोजित साजिशें चल रही हैं, तर्क और युक्ति की बात करनेवालों को गलत और गद्दार कहकर उन पर हमले किए जा रहे हैं, यह कविता—'किताब'—पूरी प्रासंगिकता के साथ हमारे आगे खुलती है, यह ध्वनित करती हुई कि किसी संगठन ने भले राजनीतिक सत्ता हासिल कर ली हो, पर उसके लिए बौद्धिक सत्ता हासिल कर पाना तब तक असंभव बना रहेगा, जब तक मानवीय और लोकतांत्रिक मूल्यों में उसकी आस्था न हो। बहरहाल, किताब के बारे में एक शेर याद आ रहा है :

> कागज की ये महक ये नशा रूठने को है
> ये आखिरी सदी है किताबों से इश्क की।

क्या वाकई यह सदी किताबों से इश्क की आखिरी सदी है? क्या वाकई हम एक ऐसे अँधेरे समय में प्रवेश करने जा रहे हैं, जहाँ सुंदर विचारों की कोई जगह नहीं होगी?

आज के कवियों की एक आम प्रवृत्ति है कि वे छंद को कविता का पुराना फैशन मानकर त्याग चुके हैं और तुक को निरर्थक कहकर खारिज करने पर तुले हैं। हिंदी कविता में जैसे कभी छंदोबद्धता एक रूढ़ि थी, वैसे ही आज मुक्तछंद एक रूढ़ि बन गया है। सच्चाई तो यह है कि कविता में मुक्तछंद का सही प्रयोग वही कर सकता है, जिसे छंद की समझ हो, लेकिन इस समझ की दृष्टि से आज के अधिकतर कवि दरिद्र हैं। आज यदि हिंदी कविता नीरस गद्य में बदल गई है, तो इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि कवियों ने निराला द्वारा प्रस्तावित मुक्तछंद के स्वरूप को ठीक से नहीं समझा और प्रायः उसका दुरुपयोग किया। कहना न होगा कि इस समस्या ने हिंदी समाज को कविता-विमुख करने में मुख्य भूमिका निभाई है। इस संदर्भ में 'समय की रंगत' को देखें, तो

सुख होता है, क्योंकि इसके रचनाकार को न केवल मुक्तछंद की सही समझ है, बल्कि छंद-रचना में भी उसके हाथ सधे हुए हैं। इस संग्रह में पाँच सॉनेट हैं, जो कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से द्रष्टव्य हैं। इनमें कवि-मन की उदासी, निराशा, एकाकीपन और आत्मभर्त्सना के भाव प्रकट हुए हैं। आरंभिक चार सॉनेट चौबीस मात्राओं के रोला छंद में हैं। पाँचवें सॉनेट में सत्ताईस मात्राओं के सरसी और अट्ठाईस मात्राओं के सार—इन दोनों छंदों का प्रयोग किया गया है। इनके बारे में खास बात यह कि इनमें कवि ने मात्राओं के नियम का तो निर्वाह किया है, किंतु तुकों के बंधन को प्रायः नहीं माना है। फिर भी जहाँ तुकें आई हैं, वहाँ अभिव्यक्ति में एक अद्‌भुत असर आ गया है : "यहाँ न कोई मित्र न शत्रु, मिलते स्वारथ-संगी/ काम निकाले, भूल गए और लगे मारने लंगी"। पाँचों सॉनेट कवि के निरर्थकता-बोध से उपजे विषाद की गहरी अनुगूँजों से भरे हैं। ये पंक्तियाँ इस बात की गवाही में हैं :

जीवित हूँ इस तरह कि जीना बेमकसद हो
स्याह रात के शून्य शिविर में ऊँघ रहा मैं
लिखे जा चुके जीर्ण पत्र फड़फड़ा रहे हैं

और—

कई युगों से मिला न कोई नेह-निमंत्रण
कई युगों से मिला न कोई परिचित प्रियजन
अजनबियों के संग चल रहा थका अकेला
पैदल सड़क किनारे धूल-धूसरित आत्मा

रेवतीजी की काव्यभाषा में एक लय-सघनता है। यह देखकर विस्मय होता है कि उनकी कविताएँ अपनी भाषा में सर्जनात्मक तथा विन्यास में सुगठित हैं। उनका मुक्तछंद सहज संवादी है। उसमें अनुप्रास और नवीन शब्द-रचना से उत्पन्न आकर्षण देखते बनता है। नवीन शब्द-रचना का कौशल एक कवि के रूप में रेवतीजी की उल्लेखनीय विशेषता है। संग्रह में अनेक स्थलों पर उनकी बिंबधर्मी भाषा की अनुप्रास-युक्त छटा हमें मुग्ध करती है : "भरी दुपहरी में शहर के भीड़ भरे इलाके में/ चौराहे के चबूतरे पर चढ़कर जब दहाड़ता है दरिंदा"। इस उद्धरण की पहली पंक्ति में 'भ', 'र' और 'ह' की आवृत्ति से उत्पन्न ध्वनि-सौंदर्य देखा जा सकता है, साथ ही 'भरी' के साथ 'हरी' और 'हरी' के साथ 'हर' का मेल भी। 'भरी' के साथ 'भीड़ भरे' का अनुप्रास भी देखने योग्य है। इसी प्रकार दूसरी पंक्ति में 'च', 'र' और 'द' की दुहरावट से

उपजा अनुप्रास भी सम्मोहक है।

कुल मिलाकर, 'समय की रंगत' की कविताएँ एक ऐसे लेखक की कविताएँ हैं, जिन्हें पाठक एक समर्थ आलोचक के रूप में जानते हैं, इस बात से अनभिज्ञ कि वे एक संवेदनशील कवि भी हैं। इसलिए इस संग्रह से गुजरना और रेवतीजी के कवि-रूप से परिचित होना मेरे लिए एक उपलब्धि है :

एक नन्हा नया बीज चमकदार
अभी-अभी गिरा है
धरती पर
चिड़िया की चोंच से छिटककर
देखो, लपक रहा है उसकी ओर
जंगल की हरापन।

❑